Research Reinforcement | **A Peer Reviewed International Refereed Journal** | **ISSN 2348-3857**
Vol. 13, Issue 2 | **November 2025 - April 2026** | **pp. 1-5**

मध्यकालीन हिंदी साहित्य में रहीम की साहित्यिक चेतना : सांस्कृतिक समन्वय और मानवीय चेतना

डॉ. पूनम पाण्डेय
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्य प्रदेश)

शोध सारांश
यह शोधलेख मध्यकालीन हिंदी साहित्य को भारतीय सांस्कृतिक समन्वय और आध्यात्मिक चेतना का स्वर्णिम अध्याय मानते हुए रहीम की साहित्यिक चेतना में सांस्कृतिक समन्वय और मानवीय चेतना का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस काल में भक्ति आंदोलन तथा मुगलकालीन सांस्कृतिक उदारता के प्रभाव से साहित्य में विविध प्रवृत्तियों का विकास हुआ। रहीम को इस युग का प्रतिनिधि कवि मानते हुए उनके काव्य में नीति, भक्ति, लोकजीवन और सांस्कृतिक समन्वय के अद्भुत संगम को रेखांकित किया गया है। लेख में रहीम की तुलना उनके समकालीन कवियों तुलसीदास, सूरदास और केशवदास से की गई है, जिससे उनकी साहित्यिक विशेषताओं को अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सके। तुलसीदास जहाँ रामभक्ति और आदर्शवादी जीवन मूल्यों के प्रवक्ता हैं, वहीं सूरदास की काव्य चेतना कृष्णभक्ति और भावुकता से परिपूर्ण है। केशवदास रीति काव्य परंपरा के प्रतिनिधि के रूप में अलंकार और शास्त्रीयता पर बल देते हैं। इसके विपरीत रहीम का काव्य व्यावहारिक जीवन, नीति और लोकानुभव से गहराई से जुड़ा हुआ है। अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि रहीम की साहित्यिक चेतना केवल नैतिक उपदेश तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें धार्मिक सहिष्णुता, मानवता और सांस्कृतिक समन्वय की गहरी भावना निहित है। वे विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का संदेश देते हैं। इस प्रकार रहीम का साहित्य न केवल अपने समय का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि आज भी मानवीय मूल्यों और सहअस्तित्व की प्रेरणा प्रदान करता है।

संकेताक्षर—*स्वेच्छाचारी, धर्मांधता, सहिष्णुता, समन्वयवाद, नीति काव्य*

प्रस्तावना

मध्यकालीन हिंदी साहित्य का 16वीं-17वीं शताब्दी का काल भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण कालखण्ड माना जाता है। इस समय हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था और साथ ही रीतिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी प्रस्फुटन हो रहा था। यह वह कालखण्ड था जब भारतीय समाज में धार्मिक,सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन द्रुत गति से हो रहे थे। युगीन साहित्य में इन परिवर्तनों की न केवल गहन अभिव्यक्ति हुई अपितु समाज को एक नई दिशा भी मिली। कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन एक धार्मिक आंदोलन होने के बावजूद अपनी प्रगतिशील सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक भूमिका के लिए हिंदी साहित्य में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने वाला काव्यांदोलन है। मध्यकालीन समाज मूलतः एक सामंती समाज था। अत्याचार, शोषण, अंधविश्वास, धर्मान्धता जातिवाद,असमानता और भेदभाव इसकी मूल संरचनाओं में शामिल थे। स्त्रियों की दशा हीन थी,वे सर्वथा अधिकार विहीन थीं। समाज के निचले पायदान पर स्थित परिश्रमी वर्ग अभाव, अपमान और दरिद्रता का जीवन जीने के लिए अभिशप्त था। ऐसे विसंगति पूर्ण सामाजिक परिवेश में भक्ति आंदोलन परिवर्तन की उम्मीद के साथ उभरता है। मध्यकालीन सामंती व्यवस्था की क्रूरता, दमन, निरंकुशता के विरुद्ध सभी भक्त कवियों ने न केवल

अपनी कविताओं में आवाज उठाया अपितु पारस्परिक प्रेम, सद्भाव तथा भाईचारे का संदेश भी दिया।

गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, रहीम, मीराबाई, रसखान, दादू आदि महान कवि साहित्य जगत के आकाश में उदित होते हैं। इन कवियों की साहित्यिक चेतना अपने-अपने ढंग से युगीन परिस्थितियों का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। उनकी रचनाओं में भक्ति, नीति, प्रेम,लोक-जीवन और काव्य-शास्त्रीय सौंदर्य के विविध आयाम दिखाई देते हैं।

वस्तुतः यह युग सम्राट अकबर की महत्वाकांक्षा एवं चतुर्दिक विजय योजना के आधार पर साम्राज्यवादी नीति तथा एकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के पुष्पित-पल्लवित होने के स्वर्णिम युग के रूप में रेखांकित है। यद्यपि बादशाह अकबर ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक,आर्थिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक सभी क्षेत्र में हिंदू-मुस्लिम एकता, पारस्परिक समन्वय और विशाल हृदयशीलता का परिचय देकर एक व्यवस्थित शासन प्रणाली की स्थापना का भरपूर प्रयास किया। किंतु, स्वेच्छाचारी शासन प्रणाली होने के कारण देशवासियों में असुरक्षा,अधिकार विहीनता,संशय और डर का भाव कमोबेश बना हुआ था। फिर भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखते हैं, "इसमें संदेह नहीं कि अकबर के राजत्व काल में एक ओर तो साहित्य की चली आती हुई परंपरा को प्रोत्साहन मिला, दूसरी ओर भक्त कवियों की वाणी का स्रोत उमड़ चला। इन दोनों की सम्मिलित विभूति से अकबर का राजत्व काल जगमगा उठा और साहित्य के इतिहास में उसका एक विशेष स्थान हुआ। जिस काल में सूर और तुलसी ऐसे भक्ति के अवतार तथा गंग, नरहरि और रहीम ऐसे भावुक कवि दिखाई पड़े उसके साहित्यिक गौरव की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक ही है" (शुक्ल, 1999)। स्पष्ट है कि अकबर के समय साहित्य को यथोचित संरक्षण मिला तथा दरबारी भाषा फारसी होते हुए भी हिंदी को विशेष स्थान हासिल था। अकबर के दरबार में हिंदी के अनेक कवियों को महत्व प्राप्त था।

युगीन कवियों की साहित्यिक चेतना

इस लेख के अंतर्गत रहीम युगीन सभी कवियों की साहित्यिक चेतना का विवरण दे पाना संभव नहीं है, अतएव उस युग अत्यंत महत्वपूर्ण कवियों—तुलसी, सूर, केशव और विशेष रूप से रहीम की साहित्यिक चेतना का विश्लेषण प्रस्तुत करने का लघु प्रयास किया गया है।

भक्ति और रीति कालीन हिंदी साहित्य में तुलसीदास, सूरदास और केशवदास तीन ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं जिनकी साहित्यिक चेतना अपने-अपने युग की सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। इन कवियों ने न केवल साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि समाज, संस्कृति और मानवीय मूल्यों को भी नई दिशा प्रदान की। तुलसीदास की साहित्यिक चेतना में लोकमंगल, धर्म, आदर्श जीवन और सामाजिक अनुशासन का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना की जिसमें प्रेम, सदाचार, धर्म और मानवता का वास हो। तुलसीदास ने तत्कालीन समाज में व्याप्त अनीति, अत्याचार, वैमनस्य, लोभ और अधर्म का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया है—"कलिकाल बिहाल किए मनुजा, नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा।" इसके साथ ही उन्होंने आदर्श समाज का समाधान भी प्रस्तुत किया—"सब उदार सब पर उपकारी, विप्र चरण सेवक नर नारी (पोद्दार, 2015)।"

तुलसीदास के रामराज्य की कल्पना सामाजिक समता, नैतिकता और सुख-शांति पर आधारित है। उनके अनुसार ऐसा समाज ही श्रेष्ठ है जहाँ भय, रोग, शोक और अन्याय का स्थान न हो। रामकुमार वर्मा के अनुसार तुलसीदास ने कलियुग वर्णन के माध्यम से अपने समय के ध्वस्त और पतित समाज का चित्र प्रस्तुत किया है तथा उसके समाधान के रूप में आदर्श समाज-निर्माण की परिकल्पना की है। तुलसीदास ने लोकप्रसिद्ध कथाओं को अपनाकर उन्हें अपनी अनुभूति, भक्ति और काव्य-कला से ऐसा स्वरूप दिया कि वे जनसामान्य के लिए सहज और सर्वग्राह्य बन गईं। उनकी साहित्यिक चेतना में धर्म केवल आध्यात्मिक विषय नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था और लोककल्याण का आधार बनकर उपस्थित होता है।

सूरदास की साहित्यिक चेतना मुख्यतः कृष्णभक्ति, प्रेम और मानवीय संवेदनाओं से प्रेरित है। उनके काव्य में भक्ति का रूप अत्यंत सहज, भावनात्मक और मानवीय है। उन्होंने कृष्ण को अलौकिक देवता के रूप में नहीं बल्कि लोकजीवन से जुड़े बालक, मित्र और प्रियतम के रूप में चित्रित किया। वात्सल्य रस का उनका चित्रण अत्यंत मार्मिक है—"जसोदा हरि पालने झूलावैं।" सूरदास के साहित्य में श्रृंगार, प्रेम और विरह की भावनाएँ आध्यात्मिक ऊँचाई प्राप्त कर लेती हैं। राधा-कृष्ण का प्रेम आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक बन जाता

है—"अखियाँ हरि दर्शन को प्यासी।" उनकी काव्य चेतना लोकजीवन से गहराई से जुड़ी हुई है। ग्रामीण संस्कृति, उत्सव, रीति-रिवाज और मानवीय संबंधों का अत्यंत स्वाभाविक चित्रण उनके पदों में मिलता है (सिंह, 2022) ।

सूरदास का साहित्य सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने स्त्री को सामंती बंधनों से मुक्त स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी गोपियाँ केवल प्रेमिका नहीं बल्कि आत्मसम्मान और स्वतंत्र चेतना से युक्त स्त्रियाँ हैं। डॉ. राममनोहर लोहिया ने भी कहा है कि भारतीय मिथकों में स्त्री-पुरुष समानता का सर्वोत्तम उदाहरण कृष्ण और वृंदावन में मिलता है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने कृषक जीवन की पीड़ा और शोषण का भी मार्मिक चित्रण किया है—"सबैं क्रूर मोसों ऋण चाहत।" इस प्रकार सूरदास की साहित्यिक चेतना में भक्ति, प्रेम, लोकजीवन, मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना का अद्भुत समन्वय मिलता है (पांडेय, 2004)।

रीतिकाल के प्रवर्तक कवि केशवदास की साहित्यिक चेतना तुलसी और सूर से भिन्न होकर अधिक शास्त्रीय और कलात्मक है। उनकी काव्य दृष्टि में अलंकार, नायिका-भेद और रस-सिद्धांत का विशेष महत्त्व है (सिंह, 2017)। वे हिंदी साहित्य में काव्यशास्त्र के प्रथम प्रौढ़ आचार्य माने जाते हैं। उनकी प्रसिद्ध कृति 'रामचंद्रिका' में भाव की अपेक्षा भाषा की क्लिष्टता, चमत्कार और अलंकारों की प्रधानता दिखाई देती है। इसी कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें "कठिन काव्य का प्रेत" कहा है (पांडेय, 2004)। केशवदास ने हिंदी काव्यशास्त्र को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उनका उद्देश्य केवल भावाभिव्यक्ति नहीं बल्कि काव्य के शास्त्रीय पक्ष का निरूपण था। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने उन्हें रीतिकालीन आचार्यों में श्रेष्ठ माना है क्योंकि उन्होंने काव्य के विभिन्न अंगों का गंभीर और पांडित्यपूर्ण विवेचन किया। उनके साहित्य में संस्कृत काव्यशास्त्र का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। यद्यपि रीतिकालीन कवियों का प्रमुख विषय श्रृंगार था, फिर भी उन्होंने तत्कालीन समाज को सौंदर्यबोध और कलात्मकता प्रदान की (नागेंद्र, 1958)। हालांकि इस काल की साहित्यिक चेतना जीवन के व्यापक संघर्षों से दूर दिखाई देती है, फिर भी उसमें रमणीयता और काव्य कौशल का अद्भुत वैभव विद्यमान है।

रहीम के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

रहीम मध्य युगीन सामंती दरबारी संस्कृति के कवि, सेनापति, प्रशासक, कूटनीतिज्ञ, दानी, मानवतावादी, कलाप्रेमी, संवेदनशील, बहु भाषाविद् एवं उच्च कोटि के विद्वान थे। रहीम अनेक कवियों और कलाकारों के आश्रय दाता थे और उन्हें सम्मान, सुरक्षा, जीविका सब कुछ उपलब्ध कराते थे। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं, "ये दानी और परोपकारी ऐसे थे कि अपने समय के कर्ण माने जाते थे; इनकी दानशीलता हृदय की सच्ची प्रेरणा के रूप में थी, कीर्ति की कामना से उसका कोई संपर्क न था। इनकी सभा कवियों और विद्वानों से भरी रहती थी। अकबर के समय यह प्रधान सेनानायक और मंत्री थे और अनेक बड़े-बड़े युद्ध में भेजे गए थे" (शुक्ल, 1999)।

वस्तुतः रहीम के युग के समाज का आधार सामंतवाद था और युगीन बादशाह शासन का सर्वे सर्वा होता था। बादशाह के अधीन सामंत वर्ग शासन तंत्र के संचालन और राजस्व वसूली में महती भूमिका का निर्वहन करता था और विलासिता एवं वैभवपूर्ण जीवन जीता था। दूसरी ओर आम जनमानस का जीवन कठिनाइयों से भरा हुआ था। समाज में स्त्रियों की दशा काफी सोचनीय थी। समाज अनेक स्तरों पर विखंडित था। इसी दौर में इस युग के कवियों ने अपने सशक्त लेखनी से समाज में चेतना फैलाने में अपनी महती भूमिका निभाई।

रहीम मध्यकालीन इतिहास के गिने-चुने रत्नों में से थे जिनका कलम तथा कृपाण दोनों पर समान अधिकार था। एक सेनापति एवं कुशल रणनीतिकार के रूप में जितनी प्रसिद्धि रहीम को मिली उससे ज्यादा उन्हें उनकी लेखनी के कारण मिली जिसमें मानव-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। इस संबंध में डॉक्टर समीर बहादुर सिंह लिखते हैं, "ये सदा लहू की धार में रणलक्ष्मी की आराधना करते थे और कीमती माला की मोतियों से शुभ्रांबरा सरस्वती की अर्चना। ये 'साहिबे सैफ' (तलवार) होने के साथ-साथ 'साहिबे-कलम' भी थे और रहमदिली तथा फैयाजी के पुतला थे। जनता की भाषा एवं साहित्य में इनका अमूल्य योग, शरण में आए हुए कवियों एवं कलाकारों को इनका उदार आश्रय दान तथा देश के सभी धर्मों के प्रति इनका सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण आदि ऐसी बातें थीं, जो इनकी कोटि के अन्य व्यक्तियों में उपलब्ध नहीं थी" (सिंह, 1960)। मआसिरी रहीमी में लिखा है,-रहीम में विभिन्न भाषाओं पर चाहे वह भारतीय हो या अभारतीय,शास्त्रीय या साहित्यिक हो अथवा बोलचाल की, अधिकार प्राप्त कर लेने

की असामान्य क्षमता थी। इन्हें अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत तथा हिंदी का प्रौढ़ ज्ञान था। अरबी छोड़कर अन्य सभी भाषाओं में इन्होंने काव्य रचना भी की थी।

रहीम की रचनाओं में भारतीय प्रेम,भक्ति, दान, मान,अनुभव, सभ्यता आदि का विवेचन अद्भुत है- अलौकिक है और जिनमें सर्वत्र भारतीय धर्म ग्रंथों से प्राप्त ज्ञान का पुट दिखाई देता है। अपनी रचनाओं के कथानक इन्होंने मुख्य रूप से बाल्मीकि रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, देवी भागवत पुराण आदि से ग्रहण किया है जो वस्तुतः हिंदू धर्म, साहित्य, सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञान के आधार ग्रंथ हैं। इसीलिए इनकी रचनाएँ जीवन के रसों से ओतप्रोत हैं। आचार्य द्विवेदी लिखते हैं,"मानसिक औदार्य, सांस्कृतिक विशालता और धार्मिक सहिष्णुता के विषय में इनकी तुलना इने-गिने लोगों से की जा सकती है। इतने विस्तृत सांस्कृतिक आधार पर जीवन को देखने वाले कवि का 'खेटकौतुकम' जैसी अरबी, फारसी, संस्कृत तथा हिंदी के मिश्रण का कौतुक और 'मदनाष्टक' की मौज आश्चर्य और कौतूहल का विषय बन जाता है। निस्संदेह इस कवि का हृदय मानवीय रस से परिपूर्ण तथा अनासक्त और अनामिल सौंदर्य-दृष्टि से समृद्ध था" (द्विवेदी, 2021)।

नीति, भक्ति और शृंगार रहीम के काव्य की आधार भूमि हैं। सामाजिक जीवन में समरसता, मित्रता पूर्ण व्यवहार करना,संयम, सहनशीलता, क्षमाशीलता, सत्संग के महत्व को लेकर रहीम ने अनेक सार्थक दोहे लिखे हैं। रहीम का सांसारिक अनुभव का फलक अति विशाल था। लोक प्रचलित विषयों के चित्रण में रहीम की अभिव्यक्ति बेजोड़ है। एक दोहे में रहीम कहते हैं कि काम पड़ने पर और काम पूर्ण हो जाने पर इंसान का व्यवहार भी बदल जाता है—

काज परे कुछ और है, काज सरे कुछ और।
रहिमन भँवरा के भए,नदी सिरावत मौर॥

रहीम मानव मन के सूक्ष्म चितेरे थे। उनका मानना है कि मनुष्य को अपना दुख मन में ही रखना चाहिए। दूसरों को सुनाने से लोग सिर्फ उसका मजाक उड़ाते हैं उस दुख को कोई बांटता नहीं है—

रहिमान निज मन की व्यथा,मन ही राख्यो गोय।
सुनि अठिलै हैं लोग सब, बांटि न लैहैं कोय॥

(रहीम दोहावली (छंद 261)

रहीम जीवन में आने वाली समस्याओं को, सुख-दुख को समभाव और धैर्य पूर्वक धारण करने के लिए कहते हैं। उनका मानना है कि समय आने पर हर काम उसी तरह बनता है जैसे समय आने पर ही वृक्ष में फल लगते हैं और समय के अनुसार ही वे गिर जाते हैं—

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहै नहिं एक सी का रहीम पछितात॥

(रहीम दोहावली छंद 261)

रहीम रचनावली के संपादक डॉ सत्य प्रकाश मिश्र कहते हैं, "रहीम की कविताएँ 'गाढ़े के साथी' के रूप में हिंदी भाषी जनता के काम आती हैं" (चतुरसेन, 1970)।

हिंदी साहित्य में रहीम के नीति के दोहों को जो लोकप्रियता और सम्मान मिला वह तदविषयक रचना के लिए अन्य कवियों को शायद कम ही प्राप्त हुआ है।

दरअसल नीति काव्य की रचना की दृष्टि से तुलसी को छोड़कर अन्य समकालीन कवियों—नरहरि, गंग, बिहारी वृन्द आदि सभी हिंदी के कवि उतने लोकप्रिय नहीं हो सके जितने की रहीम। उनके नीति काव्य में मर्यादा, काया, प्रेम, स्वार्थ, कपट, अभियान, ईर्ष्या, चिंता, कुसंगति स्वभाव, अधमता, दुख-विपत्ति, नियति, परोपकार एवं त्याग, संतोष, मूढ़ता, सच्ची मित्रता, अन्याय, अनीति, गुण-महात्म्य, आत्मश्लाघा, चापलूसी आदि समस्त विषयों के छंद मुक्त भाव से प्रवाहमान हैं। जीवन को सचेष्ट, सचेतन सुखमय तथा सरस बनाने के लिए इनका अनुभूतिमय नीति-काव्य अपनी सजीवता, कलात्मकता और सबसे बढ़कर उपयोगिता में सुधा-रस की भांति प्रतीत होता है। इनके बरवै और दोहों में प्रमुखतः नीति और भक्ति के भाव का प्राबल्य है। बरवै नायिका-भेद तथा मदनाष्टक में रीतिगत नायक-नायिका-भेद-विचार तथा शृंगार भाव की सलिल सरिता बहती है। इसके साथ ही नगर-शोभा वर्णन तथा शृंगार-सोरठा में भी शृंगार का भाव प्रवाहित होता दिखाई देता है। आचार्य चतुरसेन लिखते हैं, "रहीम के महिमाशाली व्यक्तित्व के स्पर्श से ये सभी साहित्यिक स्रोत सार्थक हो गए थे। इनके शृंगार-भाव में एक रसिक सामंत का मधुप्राण मचलता था।

इनके भक्ति भाव में एक सरल भक्त का आकुल मन झांकता था और इनकी नीति-भावना में एक कुशल एवं अनुभवी व्यक्ति का व्यावहारिक ज्ञान बोलता था। ये व्यंग्य-विनोद या गहरा मजाक करने में भी बाज नहीं आते थे और इनकी अन्योक्तियां बड़ी चुटकीली होती थीं।" इसी प्रकार प्रोफेसर रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है, "भक्ति काल का वैविध्य कई दृष्टियों से रहीम के कृतित्व से पूरा होता है। मुसलमान

और उस पर भी तत्कालीन शासन के अंग होकर वे हिंदू देवताओं का स्तुतिगान करते हैं। शाही दरबार के मान्य सदस्य होते हुए सूफी संतो-भक्तों की कोटि में अपने को जोड़ते हैं" (चतुर्वेदी, 1999)।

निष्कर्ष

तुलसीदास, सूरदास और केशवदास की साहित्यिक चेतना हिंदी साहित्य की तीन महत्त्वपूर्ण धाराओं का प्रतिनिधित्व करती है। तुलसी की चेतना लोकमंगल और आदर्श समाज की स्थापना की प्रेरणा देती है, सूरदास की चेतना प्रेम, भक्ति और मानवीय संवेदना को प्रतिष्ठित करती है, जबकि केशवदास की चेतना काव्यशास्त्र, अलंकार और कलात्मक सौंदर्य को समृद्ध करती है। इन तीनों कवियों ने हिंदी साहित्य को वैचारिक, सांस्कृतिक और कलात्मक दृष्टि से समृद्ध बनाने में अमूल्य योगदान दिया। रहीम मध्यकालीन हिंदी साहित्य के ऐसे महान कवि थे जिनकी साहित्यिक चेतना में सांस्कृतिक समन्वय, मानवीय मूल्य और लोकमंगल की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे मुगल दरबार के प्रमुख सेनापति और विद्वान होने के साथ-साथ हिंदी, संस्कृत, फ़ारसी और अरबी भाषाओं के ज्ञाता थे। रहीम ने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति की उदारता और समन्वयवादी दृष्टि को अभिव्यक्त किया। रहीम की साहित्यिक चेतना का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष हिंदू–मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय है। उन्होंने भारतीय भक्ति परंपरा और सूफ़ी विचारधारा का सुंदर मेल प्रस्तुत किया। उनके दोहों में कृष्णभक्ति, नीति, प्रेम, दया, विनम्रता और मानवता के आदर्श मिलते हैं। वे धर्म, जाति और संप्रदाय से ऊपर उठकर मनुष्य को मानवता का संदेश देते हैं। उनका प्रसिद्ध दोहा—"रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय"—प्रेम और संबंधों की महत्ता को स्थापित करता है। रहीम की मानवीय चेतना लोकजीवन से जुड़ी हुई है। उन्होंने जीवन के व्यावहारिक अनुभवों को सरल और सहज भाषा में व्यक्त किया। उनके साहित्य में करुणा, सहिष्णुता, परोपकार और नैतिकता का गहरा स्वर मिलता है। वे अहंकार का विरोध और विनम्रता का समर्थन करते हैं। निष्कर्षतः, रहीम की साहित्यिक चेतना भारतीय सांस्कृतिक एकता और मानवीय मूल्यों की प्रतीक है। उनका साहित्य आज भी सामाजिक सद्भाव, प्रेम और मानवता की प्रेरणा देता है तथा भारतीय संस्कृति की समन्वयकारी परंपरा को सुदृढ़ बनाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास (34वाँ संस्करण), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1999, पृ.सं. 108
2. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2015, पृ.सं. 1004
3. तुलसीदास, रामचरितमानस (दोहा 23(4)). गीता प्रेस, गोरखपुर, 2015, पृ.सं. 932
4. वर्मा, रामकुमार, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग 1948, पृ.सं. 633
5. सिंह, बमबम, 'नीलकमल', निबंध पारिजात, मगध राजधानी प्रकाशन, पटना, 2022, पृ.सं. 66
6. पांडेय, मैनेजर. मध्यकालीन साहित्य विमर्श (सम्पा. सुधा सिंह), आनंद प्रकाशन, कोलकाता, 2004, पृ.सं. 241
7. सिंह, गोपेश्वर, मध्यकाल : एक पुनर्मूल्यांकन (सम्पा. धनंजय कुमार दुबे), श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2017. पृ.सं. 111
8. पांडेय, मैनेजर, मध्यकालीन साहित्य विमर्श (सम्पा. सुधा सिंह), आनंद प्रकाशन, कोलकाता, 2004, पृ.सं. 246
9. मिश्र, शिवकुमार, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य. लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2012, पृ.सं. 159
10. नागेंद्र (सम्पा.), हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास (षष्ठ भाग : रीतिकाल), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1958, पृ.सं. 443
11. उपर्युक्त, पृ.सं. 214
12. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास (34वाँ संस्करण), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1999, पृ.सं. 108
13. सिंह, समर बहादुर, अब्दुल रहीम खानखाना, साहित्य सदन, झांसी, 1960, पृ.सं. 232
14. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, अतरचंद कपूर एंड संस, दिल्ली, 2021, पृ.सं. 203
15. रहीम दोहावली (छंद 35)
16. रहीम दोहावली (छंद 208)
17. रहीम दोहावली (छंद 261)
18. मिश्र, सत्य प्रकाश (सम्पा.), रहीम रत्नावली, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज 1994, पृ.सं. 67
19. चतुरसेन, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, प्रज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, 1970, पृ.सं. 287
20. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, 1999, पृ.सं. 52